



UNIVERSAL  
LIBRARY

**OU\_194676**

UNIVERSAL  
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. M 81.6 / S 692 Accession No. M 4627

Author सोमण, द. चिं

Title अभिसिम. 1953

This book should be returned on or before the date  
last marked below.

---



# झि म झि म

[ काव्यसंग्रह ]



द. चिं. सोमण



प्रकाशक

श्री. द. चिं. सोमण,  
वाशीम.

मुद्रक

पां. ना. बनहट्टी, बी. एस्सी.  
व्यवस्थापक, नारायण मुद्रणालय  
धनतोली, नागपूर.

—सर्व हक्क लेखकाचे स्वाधीन—

एकमेव विक्रेते

श्री. कुंडलराय मोहेकर,  
'पराग प्रकाशन'

पराग बिल्डिंगज, धरमपेठ, नागपूर.

## अगोदर—

‘क्षिमक्षिम’ हा माझा दुसरा काव्यसंग्रह आज प्रसिद्ध होत आहे. पहिला ‘भावना’ हा संग्रह १९३८ साली प्रसिद्ध झाला.

‘क्षिमक्षिम’ या संग्रहातील सर्वच अष्टावीस कविता यापूर्वी निरनिराळ्या नियतकालिकातून वेळोवेळी प्रकाशित झालेल्या आहेत. प्रत्येक कवितेच्या शेवटी त्या त्या निरनिराळ्या कालिकांचा उल्लेख मी केलेलाच आहे.

संग्रहातील ‘करपुतळीत’ सारख्या काही कवितांना मानस-शास्त्रांतील ‘अंतर्मन प्रतीकाची भाषा वापरते’ या सिद्धांताचा आधार आहे हे लिहायला नकोच !

प्रस्तुत संग्रह प्रसिद्ध करतांना अनेक सन्मित्रांचे मला साह्य झाले; विशेषतः प्राध्यापक लेखक प्र. वा. उध्वरेषे, एम. ए., खामगाव, सुप्रसिद्ध कवि श्री. शरत्चंद्र मुक्तिबोध, सुषमा या प्रसिद्ध मासिकाचे संपादक श्री. कुंडलराय मोहंकर व माझे कवि मित्र श्री. ज्ञा. रा. साधु, वाशीम इत्यादिकांच्या मदतीशिवाय हा संग्रह प्रसिद्ध करणे मला शक्यच झाले नसते ! या सर्व मित्रांचा मी ऋणी आहे !

नारायण मुद्रणालयाचे श्री. पां. ना. बनहट्टी यांनी अवघ्या दहाबारा दिवसांत हा संग्रह अतिशय काळजीपूर्वक छापून दिला याबद्दल त्यांचे मी मनःपूर्वक आभार मानतो ! त्यांचा माझा पूर्वीचा परिचय मुळीच नसताना मुद्दा त्यांनी ज्या आस्थेने ‘क्षिमक्षिम’ हा संग्रह मला छापून दिला ती आस्था मला उल्लेखनीय वाटते !

एवढेच !—

आक्टोबर १९५३

द. चिं. सोमण

## अनुक्रमणिका



| विषय                 | पृष्ठ | विषय                | पृष्ठ |
|----------------------|-------|---------------------|-------|
| १ प्रतीकात्मक जीवन   | ५     | १५ शिमशिम           | ३२    |
| २ प्रेमाविषयी        | ८     | १६ स्वप्नरंजन       | ३३    |
| ३ रात्री             | १०    | १७ शांतम्-दह !      | ३६    |
| ४ कालावधीत           | १३    | १८ ऐक मानवा         | ३८    |
| ५ वियोगीं दारुण      | १४    | १९ दैत्य मस्तकीं    | ३९    |
| ६ हेंच तुझे रूप      | १५    | २० उन्हांत ताबूम    | ४१    |
| ७ साक्षात्कार        | १७    | २१ साद-पडसाद        | ४४    |
| ८ कातरवेळीं          | १८    | २२ उजाडतांना        | ४७    |
| ९ पहा पाखरूमला गवसले | २१    | २३ बरे होते द्वैत   | ४९    |
| १० प्रेक्षका         | २३    | २४ परोक्ष आत्मज्ञान | ५०    |
| ११ हृदयदान           | २५    | २५ करपुतळींत        | ५१    |
| १२ मेघमल्हार ऐकतांना | २७    | २६ त्याची आत्महत्या | ५३    |
| १३ देव बोलला         | २९    | २७ मार्गदर्शक       | ५४    |
| १४ शंका              | ३१    | २८ दिव्य काननीं     | ५९    |





## प्रतीकात्मक जीवन

|                |                 |                  |
|----------------|-----------------|------------------|
| कुणा मानवाचा   | जीवनानुभव       |                  |
| प्रतीकात्मक    |                 |                  |
| दावीत आहे      | मज ही सस्तिता   | प्रवासांत माझ्या |
| निर्मल मंगल    | उपेच्या करानी   |                  |
| ठेविता खाली    | इळूच भूवर       |                  |
| निघे वाहिनी    | जीवन-वाहिनी     |                  |
| शिकत वहाया.    |                 |                  |
| गुलाची धुक्यास | बाल्यावस्थेच्या |                  |
| टाक्रीत मागे   | आतुरतेने        |                  |
| घेत वळणें      | तद्रीत आपुल्या  |                  |
| आलें येथवर     | जीवन सहज.       |                  |
| येथे मात्र हा  | ऐन मार्गांत     |                  |
| ठाकला राक्षसी  | कडा तुटलेला     | स्वप्नभंगाचा !   |
| कोसळता ओघ      | वेगे अवचित      |                  |
| हाय ! केवढें   | अधःपतन !        |                  |
| फेसाळे, खळाळे, | होई गढूळ,       |                  |
| करी गर्जना     | देत धडका,       |                  |
| परी या जीवना   | धराया तोलून     | कुणास बळ ?       |
| अथवा चढावा     | कसा ह्याने कडा  |                  |
| अधःपाताच्याच   | आधारावर ?       |                  |

|                   |                   |              |
|-------------------|-------------------|--------------|
| पिसाट गर्दी       | कांटेरी वृक्षांची | वेढीत ह्यास, |
| पतनामुळेच         | मिळतां जीवन       | आलीं आकारा   |
| दुष्कर्मांचीं हीं | भेसुर पिशाच्चे    |              |
| विवेकबुद्धीस      | काढितीं सोलून     |              |
| कंटकांनी जीं,     |                   |              |
| आणि हे भोवरे      | पात्रामघले        | कुविचाराचे   |
| आहेत गुंग         | क्रीडेंत निर्भय ! |              |
| वळे अकस्मात       | ताबूस लोंढा       |              |
| जणू कुणाची        | ऐकून हाक          | बदली दिशा    |
| मंत्रमुग्ध हा     |                   |              |
| परी दिशाभूल       | मुळी न झालेली     |              |
| सुरेख संगम        | जाहला येथे        |              |
| संथ अथांग         | कुणी तरंगिणी      |              |
| घेई सामावुनी      | आपल्या अस्तित्वां | सुदैवे ह्यास |
| करीत शांत         | आलिंगनांत !       |              |
| येथून आता         | निराळेच सारें,    |              |
| अनेक कालवे,       | विद्युत-यंत्रें,  |              |
| विस्तीर्ण बागा,   | उद्यानें सुरम्य,  |              |
| मचव्यांतील        | व्यापारी माल,     | माशांचे पीक, |
| तटावरचें          | वरुण मंदिर        |              |
| लावीत आहेत        | जीवन सार्थकी !    |              |

आकाशांतला      नीलिमा विशुद्ध  
बिंबला आहे      पार्त्री काठोकाठ  
सुचवीत जणू      अंतरांतील  
तात्त्विक विचार      समाधान, शांति !

हळूच वळला      जलौघ पुन्हा  
दक्षिणेकडे  
आणि जाहलें      जीवन अदृश्य      काळोखामधे  
पसरतां रात्र !

—अभिरुचि : डिसेंबर १९५१.

## प्रेमाविषयी

केव्हा, कुठे, कोणी, कां आणि काय ?  
सांगतो सारें—

|                |                  |                 |
|----------------|------------------|-----------------|
| जेव्हा चाले    | सारा व्यवहार     | मानवप्राण्यांचा |
| केवळ खुणानी    | भाषेच्या अभावीं. |                 |
| पारघ केलेलें   | कोवळें श्वापद    |                 |
| प्रथम जेव्हा   | पडे अग्नीत.      |                 |
| महाकाव्यांची   | निर्मिति जधी —   |                 |
| परमाणु-शक्ति   | यदा रमली         | भीषण तांडवीं    |
| हिरोशिमामध्ये— |                  |                 |
| आणखी जधी       | सूर्याचा गोळा    | थंड व्हावयाचा   |
| काल ये जवळ     | लक्ष वर्षांनी    |                 |

|                     |                |            |
|---------------------|----------------|------------|
| जेथे बर्फाचा        | थर जाडजूड      |            |
| क्षितिजापर्यंत      | पांढरा शुभ्र ! |            |
| संथ अथांग           | जेथे सरिता     |            |
| निळसर रम्य—         |                |            |
| चकाकणाऱ्या          | जेथे वाळवंटीं  | दावी मृगजल |
| आर्द्रा पर्जन्य—    |                |            |
| मेंदीच्या पानांच्या | रेखीव सावल्या  |            |
| जेथे भूवर—          |                |            |
| कायमचा जेथे         | संधिप्रकाश     | गूढ, उदास— |

दोन त्या व्यक्ति  
ऐन यौवनी--

व्हावयाची ती  
त्याच्याचकडे,  
त्याचीच मूर्ति  
सुचेना त्यास  
तिचीच प्रतिमा  
बसे तो निश्चल  
बावरे तीहि

अति आकर्षित

स्वप्नांत तिच्या  
तिच्यावांचून क्षणभर कांही,  
चित्तांत त्याच्या--  
अनेक वेळां  
कसल्या तरी तंद्रींत कुठे--

उमा-महेश्वर,  
ह्यांनी जें केलें—  
सागर-सरिता,  
हृदयाची हाक  
निर्मल भावना  
करितील जें—

आदाम-ईव्ह

रजनी-चंद्रमा  
आणिक मानव,  
आचार आणि

तेंच केलें त्यांनी !  
परस्परांच्या  
जाहलीं तीं दोघें !

अस्तित्वीं विलीन

—अभिरुचि : जानेवारी १९५१

## रात्रीं

आकाशाच्या विशाल पार्शी  
द्रावण करिते वेडी रात्री  
स्फटिक तयांतिल अनंत कोटी  
ढवळुन ढवळुन विरघळवी ती  
लहान मोठे क्रमें लोपतां  
चढूं लागते द्रवा शुभ्रता  
अंतिं धवळता काळा पेला  
टाकुनि जाते निजधामाला  
सायंकाळीं दुसऱ्या दिवशीं  
परतायाला गेली तैशी  
द्रवांत इकडे स्फटिक पुन्हा पण  
तसेच बनवी सुस्थिर द्रावण  
काळाठिक्कर पुनरपि हो द्रव  
पुन्हा धवळता रात्रीं दे नव  
अशा तमीच्या गमनागमनीं  
युगे लोटलीं कधीपासुनी  
कुणास ठावें प्रश्न कशाला  
वेडीची ती प्रयोगशाळा  
उद्देशे का विशिष्ट असला  
प्रयोग अविरत तिचा चालला

गतकालाचा मग का जमणें  
 तर्क कुणाला कधीं चितने  
 अथवा कळणें थांबणें कधीं  
 पिशी तमिस्रा स्वकार्यामधि

—‘पिशी’ परो कां तिला म्हणावें  
 बुद्धिहीन जन कां न गणावें  
 या, लव लक्षू गत इतिहासा  
 बघू कुणाचा हुकमी फासा  
 मानाचीं ज्यां नंतर दानें  
 अप्रबुद्ध ते आधि भासणें  
 प्रारंभीचे खुळे शेवटीं  
 मान्य अलौकिक जगतीं ठरती  
 आर्किमिडिज पथि विवस्त्र घावे  
 त्यागी गौतम राज्य-वैभवे  
 बाल्हिय शिकंदर अश्रू ढाळी  
 कोलंबस तो नौका ढकली  
 विजनिं ओरडे डेमॉस्थेनिस  
 पर्णे जमवी डार्विन निरलस  
 आज वाचनें साक्रेटिसचीं  
 गॅलिलिओला जनता जाची  
 अशा दाखवू कितीक व्यक्ती  
 वरचढ पटतां गातो महती

कवि एखादा कागद फाडी  
 चित्रकार कुणि रेवा ओढी  
 पतंग कोणी उडवित राही  
 वाफ निसटती कोणी पाही  
 आमुच्यांतला खेळ हा खुळा  
 दोष वृथा कां मग रजनीला  
 कार्य साधणें असेल कांही  
 ज्याच्यासाठी येत जात ही  
 ध्येयप्राप्ति नच वेड न जडतां  
 प्रगति खुंटते पिसें न भरतां  
 वेड सपद्धत जेथे दिसतें  
 तिथे पडावीं पुष्पें हस्तें  
 ओथंबावे तेथे लोचन  
 भावसुमांचें व्हावें विकसन  
 हेंच शिकविलें अजवर कालें  
 पटवुन घेणें केवळ उरलें  
 तोंवर थांबो जग हें रजनी !  
 निंदो तुजला नच अज्ञानी !

—युगवाणी : जुलै १९४७



## कालावर्धित

विश्वाचै प्रतीक  
 कालाब्धि अथांग  
 इतका व्यापक  
 इतका निश्चल  
 संचयीं निःशब्द  
 वस्तुजात सारी  
 घन, खग, नग,  
 नौकासमूहांत  
 व्हावयास पार  
 चाले अविरत  
 सदा गतिमान  
 डुलत चाललीं  
 अद्भुत सचारीं  
 गति आणि दिशा  
 ज्यांच्यामुळे होती  
 सत्याच्या आधारें  
 डोलकाठी कुठे  
 अंकुर जेधवां  
 पाहतां पाहतां  
 संमुख जाहली  
 विनष्ट तिकडे  
 प्रयाणांत यान

अनादि अनंत  
 भरे अघटित  
 पूर्ण निराकार  
 फुटे न तुषार  
 अशा विलक्षण  
 करी पर्यटन  
 सरिता, तारका  
 अब्जावर्धा नौका  
 गूढता अपार  
 स्पर्धा अनिवार  
 अंतःप्रेरणेने  
 कैक जलयानें  
 नौकांच्या सगळ्या  
 वेगळ्या वेगळ्या  
 दृष्टिभ्रम नित्य  
 गोचर असत्य  
 दृष्टीस पडत  
 भूर्मीतुन येत  
 विकसे कलिका  
 गमनांत नौका  
 मंदावत ज्योत  
 दृष्टिआड होत !

—आत्मोन्नति : एप्रिल १९४८.

## वियोगीं दारुण

वियोगीं दारुण  
पाखडी मी प्राण !

जनींहि विजनीं  
उद्गाता मी मौनीं  
विदग्ध अश्रूनी  
अमृत जीवन

मनाचें मंदिर  
स्व-रूप साकार  
प्रशांत गोचर  
शापद भीषण.

पटलें अद्वैत  
अखंड द्वैतांत  
निस्वार्थी स्वार्थांत  
अपूर्ण मी पूर्ण.

पुरुष प्रकृति  
एकत्व विवर्ती  
तटस्थ ती मूर्ति  
निष्ठुर निर्गुण !

—अभिरुचि : जून-जुलै जोड अंक १९५०.

## हेंच तुझें रूप

|                   |                         |
|-------------------|-------------------------|
| हेंच-हेंच तुझें   | रेखीव रूप               |
| भाविकपणें         | तन्मय होऊन रंगविलें जें |
| घवल मृदुल         | दलादलावर                |
| करून कुंचले       | नाजुक अगदी              |
| पापण्यांचेच       |                         |
| नेत्रीं साठलेल्या | पुष्पसृष्टींतल्या       |
| सुरम्य रंगांच्या  | बिंदुबिंदुमध्ये         |
| करीत मिश्रित      |                         |
| नयनोदकाचे         | पवित्र बिंदु !          |

|                 |                    |
|-----------------|--------------------|
| हेंच तें रूप    |                    |
| गोचर जें झालें  | स्वप्नांच्या जर्गी |
| -कधी उदघीच्या   | निळ्या पृष्ठावर    |
| सूर्यबिंबापुढे  |                    |
| निळ्या शीडाच्या | नौकेंत निळ्या,     |
| -कुठे गिरीवरी   |                    |
| फलभारनत         | जांभळीखाली         |
| गर्द सावलींत,   |                    |
| -हिरव्या कुरणीं |                    |

|                 |                         |
|-----------------|-------------------------|
| रानटी फुलांव्या | पिवळयाधमक द्वीपावर सान, |
| —केषवा दर्पणीं  | हृदयाकार                |
| सहज वळतां       | नजर तिकडे !             |
| हेंच तुझें रूप  | चिरपरिचित               |
| प्रथम दर्शन     | घडवी आज                 |
| सत्यसृष्टीमधे   |                         |
| हृदयदेवते !     |                         |

—अभिरुचि : जून १९४८.

## साक्षात्कार

|             |                  |
|-------------|------------------|
| आसवांच्या   | पडद्यामधून       |
| घडे तुझें   | प्रत्यक्ष दर्शन  |
| सत्य विभो ! | तूंहि उत्कंठित   |
| भक्तास्तव   | व्हायास प्रगट    |
| निराकारा    | झालास साकार      |
| वन्हिरूपें  | भवताल घोर        |
| दिव्यत्वाचा | साक्षात्कार झाला |
| प्रगटतां    | दाहक ह्या ज्वाला |
| निर्गुण तूं | होतांच सगुण      |
| भडकला       | क्षणीं कणकण      |
| पटे तुझा    | वास चराचरीं      |
| उफाळतां     | अग्निजिव्हा वरी  |
| तेजोमय      | प्रभो ! प्रगटून  |
| केलें भक्ता | जगीं धन्य धन्य   |
| जीवन का     | विशुद्ध कराया    |
| जाळपोळ      | अशी निरामया !    |
| बाष्पीभूत   | अश्रूंचीं तोरणें |
| परमेश !     | तुझिया दर्शन !   |

—आत्मोन्नति

## कातरवेळीं

कातरवेळीं

येऊन अशी  
राहिलीस उभी

अवचित तूं  
अंगणीं माझ्या !

प्रभातीं आजच

किती वाटलें  
पसरलेल्या  
आणखी मग  
विरवूं लागतां  
ध्यावा मी हातीं  
घुक्याहून शुभ्र  
परंतु केलीस

प्रगटावेस तूं  
दाट घुक्यांतून  
बालार्क भगवा  
धवल घन तो  
तुझाच हात  
उन्हासारखा कोवळा कोवळा  
निराशा माझी !

दुपारींहि आज

होता लकाकत  
करीत तेजस्वी  
आकाशांतला  
तरीहि जघी  
गारठा होताच

माथ्यावरती जेधवां सूर्य  
सिद्ध शिलेपरी  
एकला ढग  
झोंबत देहास

होतों तदा किती  
आसुसलेला

तुझ्या कायेचा स्पर्श ऊबदार अनुभविण्या  
दृढालिंगनी !

दिसलीस न पण नयनां !

संध्याकाळीं हि तसेंच झालें  
पश्चिम दिशा दिसत होती  
बुडवून कुणी जणू काढलेली सोन्याच्या रसांत  
अस्ताद्रिवरचा दिवसमणि  
होऊन भंद आणिक लाल पिवळट जरा  
दावित होता आकार आपुला  
रेखीव वाटोळा  
तरुंतरुतून अनेक खग

आलापित होते

कुठलासा एक अनाम राग उत्कट भारी  
वाटलें तेव्हा  
असावीस तूं समीप माझ्या  
आणि मी बघत सुरेख चेहरा  
तुझा गोल गोरा

म्हणावें तुज,  
“सखे ! तें गा गे ! गान आवडतें  
आपणां दोषांचें !”

तथापि तदाहि      तूं न येतांच  
काळवंडलें      सुरम्य नभ  
जाइला मूक      पक्षीगण सारा !

—आणखी आता  
क्षणापूर्वींच      म्हटलें मनांत  
कातरवेळीं      अमंगल अशा यावी न ती गेहा !’

—आणिक आलीस  
नेमकी आताच !

—सागर : जून १९४७



पहा पाखरुं मला गवसलें

गोजिरवाणें जगावेगळें

पहा पाखरुं मला गवसलें !

जुना कधीचा गेहीं पिंजरा

पडला होता जमवित कचरा

अडगळ केवळ होत बिचारा

बेसावध कुणि कधि ठेचाळे—

जागोजागीं गंज अधाशी

अर्धेमुर्धे गज विध्वंसीं

बेपत्ताही कांही प्रासीं

कुडी खिळखिळी किती खुळखुळे—

चाप निखळुनी कधीच पडला

दारच नसतां हवा कुणाला

किति खिंडारें दार कशाला

नवलच टिकलें उरलें मुरलें—

पंजर असला किती ठेवणें

आज ठरविलें फेकुन देणें

मुहूर्ताचि कां वाट पहाणें

आणि अंगणीं त्यास आणिलें—

एक पांखरुं तोंच अंचानक  
कुटूनसें ये अति आकर्षक  
तडक पंजरीं शिरलें आणि  
किलबिल किलबिल करुं लागलें—

काय पांखरुं लोकविलक्षण  
पिंजऱ्यामधें घुसले आपण  
किलबिल थयथय गायन नर्तन  
समजा कांही रुतलें खुपलें !

—सुषमा : मार्च १९४९.

## प्रेक्षका !

वान्याचे श्रोत  
जातां डोलवून  
पळसांचीं फुलें  
तांबड्यालाल  
लागल्या आत  
क्रांतिकारक

वन्धिसायक  
जळत आणि  
सारे चराचर  
येऊन ठेपले  
ब्रनलें भुवन  
पावकमय !  
घालीत आडवे  
कुंडांत इंधना  
आणि उठवीत  
विराट, तांबूस,  
तप्त धुळीचे  
भासतात जे  
वारा तापलेला  
गभीर गूढ  
यज्ञदेवाचा

येणारे जाणारे  
चारी दिशांस  
गुल्मोहर-तुरे  
विजयपताका  
फडफडावया  
ऋतु ग्रीष्माच्या !

रविकर कोटि  
उजळवीत  
मेदिनीवर  
दिव्य अग्निकुंड

प्रचंड वृक्ष

फिरवीत स्तंभ  
धूसर, गाढ

धूमाचेच लोट  
करी गर्जना

चाले स्तुतिघोष !

दिपवीत दृष्टि  
याच कुंडांतून  
याज्ञसेनी ती,  
पंचभूतांची  
पुष्पालंकारें  
लेवून हिरवें  
लावण्यखनी  
तोवर धीर

धडकलें कुंड  
परी यावयाची  
  
पांचाली दुजी,  
भूषवून तनू  
मनोरम वस्त्र  
स्मित-वदना  
घर प्रेक्षका !

—युगवाणी : मार्च १९४६

## हृदयदान

|              |                 |                   |
|--------------|-----------------|-------------------|
| अंधारावांचून | कुणी न सोबती    |                   |
| तरीहि आलीस   |                 |                   |
| तियल्या ओसाड | गढीजवळून        |                   |
| ऐकत घुत्कार  | अशुभ भयद,       |                   |
| पलीकडच्या    | पिंपळाखालून     | भुताटकीच्या       |
| तूंच ना मजला | सांगत होतीस     |                   |
| भितात जावया  | दुपारींहि तेथें | गुराखी, गुरें !   |
| ओलांडलास     | चिंचेचा ओढा     |                   |
| बसतात जेथे   | टपून लपून       | इवापदे हिंस्त्र ! |
| पाऊलवाट      | भयाण अशी        | तुडवीत सखे !      |
| आलीस कशी     | पुरुषी धीराने ! |                   |

|                 |                  |              |
|-----------------|------------------|--------------|
| इकडे मात्र      |                  |              |
| अति हलुवार      | हृदय माझें       |              |
| करीत होतें      | प्रतीक्षा तुझी   | क्षणाक्षणाला |
| किती कुशंकांनी  | हृदयास या        | दिले चटके    |
| मिटतां लोचन     |                  |              |
| घूकांचें जोडपें | खांद्यावर माझ्या | बसून करी     |
| बिकट घू : घू :  |                  |              |

दिसे तो पिंपळ

आणि वसतीचा ब्रह्मसमंघ

पळी पंचपात्री वाजे खणखण

ओढ्याच्या पाण्यांत चक्क चमकले

मृत्यूचे डोळे !

जाऊन सारा खंबीरपणा पुरुषी पूर्वीचा

करी कासावीस भावनेची कळ कोमल हृदया

पाडी नेत्रांतून पर्जन्य अश्रूंचा !

पटलें आज हृदयें आपण

दिलीं परस्परां !

—सत्यकथा : जून १९५१.

## ‘ मेघमलहार ’ ऐकतांना

|               |                |
|---------------|----------------|
| बसुनि हादरा   | प्रचंड सहसा    |
| भूकंपाचा      |                |
| कंपित व्हावा  | मिनार सुट्ट    |
| होत तनूची     | त्याचपरी गत !  |
| क्षितिज करकरे | समीप व्हाया    |
| ध्वनी भयानक   | गूढ उमटला      |
| असंख्य तारक   | निखळति भरभर    |
| निळसर हिरवट   | उजेड पाडित     |
| प्रभा-शलाका   | उभ्या आडव्या   |
| विणू लागल्या  | अफाट जाळें     |
| नभा गवसणी     | चढवित सुंदर    |
| उदित जाहले    | अष्ट दिशांतुनि |
| गोल रुपेरी    |                |
| पळापळाला      | दीप्ति वाढती   |
| अंबरमध्या     | करून काबिज     |
| तेजोगोलक      | करितां दाटी    |
| उमटवि घर्षण   | ध्वनी भयावह    |
| उमटवि घर्षण   | विद्युत्-रेखा  |
| पहा जाहले     | अवघे गोलक      |
| विधु सोनेरी   | विद्युत्तेजीं  |
| कलंक त्यांचे  | होती प्रसृत    |

तालबद्धता  
 कलश शशींचे  
 अता कृष्णता  
 कलंक करितां  
 घेतां उसळ्या !  
 क्षितिज कण्हाया  
 तमसावृत हो  
 मत्त प्रभंजन  
 तुषार कसले  
 पहा चमकली  
 पुनरपि इकडे  
 लखलख व्योमीं  
 आली खाली  
 भरलें भवतीं  
 घेती क्षेपा  
 हुंकारांनी  
 क्षणांत येइल  
 तीच काय ती  
 गानसमाधि ! !

स्पंदनिं आपिक  
 ओतुं लागले  
 तयांस अस्थिर  
 पुन्हा लागलें  
 आता सारें  
 आला आला  
 हे कायेवर  
 तिकडे चपला  
 तिथे कितितरी  
 मुळी न मावे  
 जलधारांवर  
 अथांग पाणी  
 विराट लाटा  
 भरें कापरें  
 अता मूर्छना

—तरुण भारत : दिवाळी अंक १९४९



## देव बोलला

देव बोलला,

‘होवो !’-झालें

धनकण ऋणकण  
तेजोमेघीं  
माळ र्वींची  
धरा उपजली,  
साय दुधावर  
अगणित अँमिवा  
निबिड अरण्यें  
देव बोलला,

परमाणूंतिल  
वायु गरगरे  
ये आकारा  
रसांत खदखद  
आल्प्स, हिमालय  
विशाल प्राणी  
-आणिक मानव !  
‘होवो !’-झालें.

बकाल वस्ती  
खाटेवरती  
तुटून पडला  
बली व्हावया  
बँड पताका  
अपूर्व लखलख  
तार विजेची  
गेला कोणी  
कुठे मवाली  
बसला वेढा

कोंदट घरटें  
नट्टापट्टा  
कुणी मद्यपी  
त्या व्याधीचा !  
धार विदेशी  
बहु नटरंगी  
जोडित असतां  
देवापार्शी !  
कुठे हवेली  
पेटे दंगा

गेली अब्रू  
 रक्त सांडलें  
 अति वर्षाबीं  
 पुनरपि जलयुग  
 अखंड अश्रू  
 संज्ञावार्ती  
 देव बोलला,

हातोहार्ती  
 कोचांवरती !  
 पूर लोटले  
 विध्वंसाया  
 जलीं मिसळले  
 आणि उसासे !  
 'होवो !'— झालें.

'होवो आणिक !'  
 'होवो ! होवो !  
 देव बोलला  
 —मानव आता

देव बोलला,  
 असेंच आणिक !'  
 परी न झालें  
 होता ज्ञानी !

धनकण ऋणकण  
 तेजोमेधीं  
 कंठिं आणखी  
 अवनीवरती

दास तयाचे  
 त्याची हुकमत  
 व्योमवाहिनी  
 त्याचें 'होवो !'

'ज्ञानतरूच्या  
 घात अखेरिस !'  
 आणि विचारिं

फळेंच केला  
 देव बोलला  
 मूक राहिला !

—युगवाणी: ऑक्टोबर १९५३.

## शंका

असून जवळ  
किती किती दूर  
माझी तू आजहि  
एकाकी वाटतें  
परकेपणा हा  
अलिकडे नित्य  
जाहलें विनष्ट  
सामावलें होतें  
वाटायाचा तेव्हा  
पाहून लाभला  
उभयतांमध्ये  
घजत नव्हता  
हरपायाचेंच  
पाहतां केधवां  
सुरेख नयन  
तारायुग्म दूर  
विशाल हृदया  
तुलाच केवळ  
विशालतेची ती  
झाली अवचित  
आणखी कराया  
हृदयदेवी कां

अशी सदाच तूं  
वाटसी परंतू  
आहे तुझाच मी  
तथापि नेहमीं  
अगदीच नवा  
येत अनुभवा  
पूर्वीचें एकत्व  
जयात अस्तित्व  
कवढा उल्हास  
तुझा सहवास  
व्हावयास आड  
ज्योतीचा उजेड  
भान कितीकदा  
तुज तसे तदा  
आता भासतात  
दूर अंबरात  
केलें आकुचित  
द्याया स्थान त्यांत  
अतरींची आस  
पूर्ण कां निराश ?  
लागे हृदपार  
वैतागें अखेर ?

—अभिरुचि : डिसेंबर १९४८.

## शिम शिम

शिमशिम पडे पाऊस सकाळीं  
थरथरतात अंगणांत वेली  
दारांत तूं उभी होत रोमांचित  
पाऊस लोचनीं तुझिया दिसत !

सांगतें मुखींचें परी मज स्मित  
आनंदाश्रु तुझ्या लोचनीं दाटत  
आठवतो कां तो तेव्हाचा दिवस  
जेव्हा होती दोघां प्रीतीचीच आस

असेच तेघवां होत रोमांचित  
आनंदाश्रु आणि लोचनीं बघत  
कथिलें हृदींचें गूज परस्परां  
जुळवीत आणि उत्कट अधरां

—अभिरुचि : जुलै १९४७

## स्वमंजन

कल्पनेच्या जर्गी

कल्पनानिर्मित नगरीमध्ये

हृदय देवता

कांचन प्रासादीं रत्नमंचकीं

विरहाकुल

प्रियकर त्यांचे कलावंत हे

विरहानलीं लोटून जातां

फुलपांखरांच्या पंखावरती बसून दूर

ऐकाया मधुर सरस्वतीचें वीणावादन,

नसे वसनांचें तयांस भान

विभूषणांचा ये तिटकारा

आणि परततां प्रियकर ते

अतृप्त कर्ण

होती त्या सान्या सरोष दूर फिरवून मान,

सापडतां ते तसल्या दुःसह महासंकटीं

मीलनोत्सुक प्रीतिभक्तांचे

ओलावती नेत्र

आणि ते होतां कळवळून नत निःशब्द

कळवळा ये प्रियकरणींना

देती त्यांस प्रेमें

दृढालिंगने

वदत कांही

वीणारवाहूनी

मधुरतर,

वाटे उणें त्या

प्रियकरांना

देवेंद्रसौख्यहि !

अशी उभारतां

कल्पनासृष्टि

कवटाळितां

अशीं हीं स्वप्नें

कल्पनांची नशा

चढतां अशी

सत्यसृष्टींतील

हाहाःकार आणि

क्षुधेचे बळी,

आसूडांचे वळ,

दुःखें अर्धपोटीं

राबणान्यांचीं

जाणवती नच

कांहीहि त्यांना

बसतां कवाडें

बंद करून

एकांतामध्ये

कल्पनासृष्टींत

कल्पवृक्ष त्यांचे

पुरविती त्यांच्या

सर्व कल्पना

एका स्तंभावर

प्रीतीच्या अशा

कनकमयी

द्वारकेमध्ये

सदैव राहतां

कलावंत ते

|                    |                                  |
|--------------------|----------------------------------|
| जीवनसागर           | जाइला जरी                        |
| गर्जत प्रक्षुब्ध,  |                                  |
| अचाट आलें          | उघाण आणि                         |
| उसळल्या लाटा       | करीत कल्लोळ                      |
| एकहि तुषार         | स्पर्श न करी    देहांत त्यांच्या |
| गर्जना त्याची      | गभीर गूढ                         |
| ह्यांच्या कानीं नच | पडे कदापिहि !                    |
| करा त्यांची कीव    | किंवा तिरस्कार                   |
| तिथेच सदैव         | राहणार हे !                      |

—तरुण भारत : तृतीय वर्षारिंभांक १९४६.

## शांतम्-दह- !

|                      |                |
|----------------------|----------------|
| अश्रु-सरोवर          | तमीं निर्मितां |
| अघटित दिसला          | देखावा मज      |
| पाण्यावर शव          | एक येऊनी       |
| तरुं लागलें          | जणूं तराफा     |
| उष्णाश्रूंच्या       | बाष्पांमधुनी   |
| तत् हृदयावर          | ये आकारा       |
| शोकविव्दला           | ललना अवचित     |
| रतीच दुसरी           | विलापमग्ना     |
| काया गौरा            | वस्त्र काजळी   |
| ग्लान सुमांची        | माला कंठी      |
| पुसतां कुंकुम        | कच संभारें     |
| ‘ हाय ! हंत ! हा ! ’ | घाली पिंगा !   |

|                   |                   |
|-------------------|-------------------|
| प्रेत ललाटीं      | अन्या प्रतिमा     |
| प्रगट जाइली,      | कुणी तपस्वी       |
| जटिलो मुंडी       | लुंचित केशः       |
| करीं कमंडलु       | भाव ‘ उग्रता ’    |
| बहे तयाची         | गभीर वाणी         |
| ‘ शांतम् ! शांतम् | स्मर परमेश्वर ! ’ |



फोडित टाहो

दुजी जानकी

युवती शीर्षी

करी तापसी

क्षणभर झालो

दुज्या क्षाणिं परि

करीं जमवुनी

प्रक्षेपी ते

तापस देहीं

प्रेतललार्टी

गुप्त जाहली

आणिक गेलें

‘शांतम्-दह’ ही

धुमते माझ्या

अधिक तथापी

‘हाय ! हत ! हा !

रिक्त कमंडलु

‘ॐ’ उद्गारत

निश्चल रमणी

क्रोधकंपिता

अश्रु आपुले

‘दह !’ किंचाळत

चिंता भडकली

भस्माचे थर

ललना सहसा

शवहि तळाशीं !

परंतु वाणी

अजून कानीं !

— युगवाणी : फेब्रुवारी १९५२.

## ऐक मानवा !

|                 |                 |              |
|-----------------|-----------------|--------------|
| नभाची जिह्वा    | —आकाशगंगा—      |              |
| लागली वदाया     | कधी अचानक       |              |
| ऐक मानवा !      | कथन नभाचें      |              |
| अवकाश जेथे      | आहे मी तेथे     | सदा जागरूक   |
| तेजस्वी लोचन    | असंख्य माझे     |              |
| तम गाढतम        | आहेत शोधीत      |              |
| टाकीत जाळून     | परस्परांसच      | अखंड भ्रमणीं |
| केव्हा वैतागून, |                 |              |
| निखळून कधी      | पडत खाली        |              |
| शिणून अंतीं     |                 |              |
| गोटून जात वा    | जागच्या जागीं   |              |
| होत निष्प्राण   | अतर्क्य थंडीने, |              |
| परी आजवर        | कुठे न देखिलें  | कल्पितोस जें |
| तमः कलेवर       | विराट विरूप     | पडलेलें येथे |
| संवेदनाशून्य    | प्रज्ञाशून्यहि  |              |
| हताश मी आता     | अब्जलोचन !      |              |
| येतील कामीं     | कदाचित् तुझे    |              |
| अंतःचक्षूच,     |                 |              |
| विजनीं कुठे     | बस अंतर्मुख     | शोधीत अंतरीं |
| कल्पितोस जें    | बाह्य जगतांत    |              |

—तरुण भारत : पंचम वर्षारंभांक १९४८.

## दैत्य मस्तकीं

|                  |                |                    |
|------------------|----------------|--------------------|
| शय्येवरती        | दैत्य मस्तकीं  |                    |
| प्रमत्त होतां    | काम विकारें    |                    |
| तरळुनि गेलें     | नेत्रांपुढुनी  |                    |
| दृश्य विसंगत     | गूढ अकल्पित    | क्षणांत एका !      |
| दिसलीं सदनें     | लहान मोठीं     |                    |
| जळूं लागलीं      | आणि धडधडा      |                    |
| उजेड पडला        | लाल तांबडा     |                    |
| चितांमधुनि त्या  | आल्या धावत     | हमरस्त्यावर        |
| सुरेख तरुणी      |                |                    |
| फेडित वसनें      | जळतीं अपुलीं,  |                    |
| देहापासुनि       | अलग होउनि      |                    |
| स्तनयुग्मांचीं   | गौर वर्तुळें   |                    |
| होउं लागलीं      | भ्रमणीं वेढव ! |                    |
| तोफा अवजड        | जागोजागीं      | काळ्या प्रगटुनि    |
| ‘धुडुम्’ गर्जुनी | फिरल्या मागे   |                    |
| खाउनि रंजक,      |                |                    |
| गोल खोलगट        | सुमनें तांबुस  |                    |
| उडूं लागलीं      | धुरांतुनी त्या |                    |
| कान झाकुनी       | थवे थबकले      | नग्न स्त्रियांचे ! |

|                |              |              |
|----------------|--------------|--------------|
| वळण घेउनी      | आली पलटण     | वाजे पडघम    |
| ‘उजवा डावा’    | ‘उजवा डावा’  |              |
| मघेच ‘सॅल्युट’ |              |              |
| निराळाच तो     |              |              |
| बोट उंचवुनि    | मघलें एकच ।  |              |
| गिरक्या घेउनि  | पडतां सुमनें | टिपऱ्यांवरती |
| फुटले पडघम     |              |              |
| हसले सोजिर     | जवान सगळे    | गाल फुगवुनी  |

युगवाणी : एप्रिल १९५२

## उन्हांत तांबूस

|          |          |
|----------|----------|
| उन्हांत  | तांबूस   |
| पडतो     | पाऊस     |
| थेंब हा  | एकेक     |
| वाटतो    | मौक्तिक  |
| गुलाबी   | ज्यांवर  |
| अतर्क्य  | लहर;     |
| आकाशीं   | अनेक     |
| शिंपले   | सुरेख    |
| रवीचे    | किरण     |
| काय ते   | भंगून    |
| वैभव     | अद्भुत   |
| खालती    | ओतीत !   |
| गगन—     | कमल      |
| सुरक्त   | उत्फुल्ल |
| ढाळितें  | दंवाचे   |
| थेब वा   | वरचे     |
| जयाचा    | वर्षाव   |
| मांडीत   | तांडव    |
| अतीव     | मोहक     |
| सौंदर्य— | प्रतीक ! |

|         |             |
|---------|-------------|
| दवाच्या | मोत्यांच्या |
| असोत    | कशाच्या     |
| देविती  | सरी या      |
| रंगांची | किमया       |
| दाखवी   | आकाशीं      |
| भास्कर  | ती जशी !    |

|         |          |
|---------|----------|
| उन्हांत | तांबूस   |
| उघडे    | पाऊस     |
| पडदा    | जादूचा   |
| रंगीत   | मण्यांचा |
| उठवी    | लहरी     |
| पवन     | ज्यावरी  |
| पाहतां  | पाहतां   |
| अदृश्य  | हो आता   |
| कितीक   | ठिकाणीं  |
| साचलें  | हें पाणी |
| जयाच्या | अंतरीं   |
| आभाळ    | केशरी    |
| जयांत   | तरंग     |
| उठती    | सरंग,    |
| डुलतें  | प्रत्येक |
| सुमन    | नाजूक    |

जांभळें      पिवळें  
तांबूस      वा निळें !

गुलाबी      उन्हांत  
सदनें      नटत,  
गुलाबी      उन्हांत  
बालकें      पथांत,  
गुलाबी      उन्हांत  
अप्सरा      सस्मित !

— यमवाणी : जानेवारी १९४६

## साद-पडसाद

|                      |                 |
|----------------------|-----------------|
| एकाकीपणाची           | जाणीव होऊन      |
| साद कधी झाली         | मनस्वी उद्विग्न |
| आणि पडसादा           | साद घाली साद    |
| सादेचे उठले          | कोटि पडसाद      |
| ‘पडसादा ! ये, ये-    | पडसाद कुठे ?’   |
| अवकाशीं साऱ्या       | कल्लोळ तो उठे ! |
| तप्त वाळवंटीं        | वाळूच्या वादळीं |
| गहन काननीं           | सरिताच्या जळीं  |
| अथांग सागरीं         | भयाण कुहरीं     |
| विशाल अंबरीं         | दिशांच्या उदरीं |
| असंख्य सूर्यांच्या   | तप्त डफांवर     |
| शशींच्या सोनेरी      | भव्य झांजांवर   |
| ग्रहगोलांवरी         | प्रभाळ सुंदर    |
| नादले ते बोल         | गभीर गभीर !     |
| नादली ती वाणी        | गुंजारवांतूनी   |
| स्वर्गीं अप्सरांच्या | नूपुरीं कंकणीं  |
| कल्पद्रुमपणें        | वदलीं ते बोल    |
| सरस्वतीवीणा          | आणिक मंजुळ      |



‘पडसाद कुठे ?’  
चिरायु कालाचा

म्हणे कासावुन  
आणि क्षण क्षण !

—‘पडसाद कुठे ?’  
शोधाया निघाले  
लागलें धावाया  
त्वरित निघाल्या  
रुद्रवीणाघोष  
स्वर्गसुमगंध  
अवकाश पाही  
अवघी निर्मिति  
तेजाचे किरण  
लागला पळाया

पुसे विश्व सारें  
स्वर्गांतले वारे  
व्योमगंगाजल  
तारका चपल  
शेषाचे फूत्कार  
शोधिती आतुर  
तारांच्या नेत्रांनी  
फिरुनी फिरुनी  
लागले धुंडाया  
काळहि तो वाया !

—अचानक आणि  
सादेच्या सादेचा  
अचानक आणि  
‘साद पडसाद  
प्रभूच्या अंतरीं  
विश्वनिर्मितींत

होई विश्व शांत  
पडसाद लुप्त  
झाली नभोवाणी  
एकरूप दोन्ही !  
विश्वाची निर्मिति  
प्रभूचीच मूर्ति

पडसादीं वसे  
सादेंत वसतो  
पडसाद कुठे ?  
पडसाद बोले  
नाममात्र भिन्न  
एकरूप दोन्ही

सादेचीच साद  
आणि पडसाद  
सादेच्या अंतरीं !  
सादेची वैखरी  
साद पडसाद,  
पडसाद साद !! '

ऐकूनी ती वाणी  
सादेने मानिलें  
एकाकीपणाची  
साद पुन्हा कधी

आणि अर्थपूर्ण  
स्वतालागीं पूर्ण !  
जाणीव नुरली  
उद्विग्न न झाली !

—युगवाणी : एप्रिल १९४६

## उजाडतांना—

|                |                 |
|----------------|-----------------|
| शुक्र-तारका    | लुप्त जाहली     |
| पूर्व फाकली,   | उमलुं लागली     |
| ये हळू हळू     | मंद तेज तें     |
| नी कुठेतरी     | सहज साचतें      |
| हो प्रतिक्षणीं | स्पष्ट निर्मिति |
| दृश्य जाहल्या  | कैक आकृती       |
| प्रखरलें कसें  | तेज अवचित       |
| लखल उजळले      | तुंग दिग्गत     |
| अब्धि दीप्तिचा | भव्य प्रगटुन    |
| जाहलें सुरू    | गूढ मंथन        |
| लाट लाट ये     | आपटे फुटे       |
| पसरतां करे     | रंग उधळिते      |
| व्योम रंगलें   | रंगली धरा       |
| रंग बघ चढे     | ह्या चराचरा     |
| एक, दोन—छे!    | रंग तरि किती    |
| काय रम्यता !   | रंगसंगती !      |
| नेत्र वळविते   | पूर्व केशरी     |
| उपदिशा दिशा    | आणि शेंदरी      |
| घन तरंगती      | नीलिम्यावरी     |
| पीत, लाल वा    | गाढ तपकिरी      |

अद्रि तेथला  
 जांभळा जरा  
 वळण वाहिनी  
 कनक चमकतें  
 पांढरें धुकें  
 कुरण पोपटी  
 तरुलता पद्मा  
 पारव्या छटा  
 पुष्पसृष्टि ही  
 सर्व ही इथे  
 फिकट किरमिजी  
 शुद्ध मोतिया  
 इंद्रचाप का  
 होउनी परी

दृश्य दिव्य जी  
 तीच मजसि दे  
 दिव्यतेंतला  
 गूढतेंतला

उंच एकला  
 आणखो निळा  
 घेत धावतां  
 जल खळाळतां  
 येथ तरळतें  
 लवच झाकितें  
 हरित तरि किती  
 ज्यांत खेळती !  
 रंगदेवता  
 रंग नी छटा  
 लालबुंद वा  
 अंजिरी नवा  
 येत भूवर  
 अधिक सुंदर !

निर्मि गूढता  
 विशिव 'अस्मि'ता  
 मी प्रभा-कर  
 अंश गोचर !

—अभिरुचि : ऑगस्ट १९४९.

## बरें होतें द्वैत !

|                |                  |
|----------------|------------------|
| मज निराधारा    | बरें होतें द्वैत |
| बसे आळवीत      | सदाकदा           |
| तुझिया चिंतनीं | रमतां मानस       |
| सौख्याची आरास  | जीवनांत          |
| शांति अंतरींची | लोपतां कधी न     |
| किती समाधान    | अनुपम            |
| समाधाना पोटीं  | उचंबळे सुख       |
| केवढें कौतुक   | माझें मज         |
| अवघें अपिलें   | तुझ्या पदांवर    |
| मानून आधार     | एकमेव            |
| जय अपजय        | मान अपमान        |
| आणि पापपुण्य   | भेद नाही         |
| होतां एकरूप    | आज अवचित         |
| कठोर अद्वैत    | नशीबांत          |
| आता मी एकला    | खरा निराधार      |
| माझ्या पदावर   | माझें शीर्ष      |
| माझेच मजसी     | आता समर्पण       |
| माझेचि चरण     | आधारासी          |
| लोपली ती शांति | समाधान सुख       |
| आता मी दुर्मुख | चिरकाल !         |

— सत्यकथा : एप्रिल १९५१.

## परोक्ष आत्मज्ञान

|                     |                |
|---------------------|----------------|
| असेंच कितोदा        | आताशा होतें    |
| अलौकिक शांति        | अशी लाभते      |
| दिसतां प्रभातीं     | कुठे नयनां     |
| नाजुक कलिका         | उमलतांना-      |
| माध्यान्हीं भास्कर  | दाखवी जधी      |
| वाहिनींत रस         | रुप्याचा कधी—  |
| निशीथसमयीं          | खद्योत पुज     |
| वृक्षांस अर्पितां   | पाचूंचा साज-   |
| भरे शांति मनीं      | अपरंपार        |
| इतर जगाचा           | पडतो विसर.     |
| निसर्ग-सौंदर्य      | दर्शवी कांही   |
| आत्म्यास माझिया     | जें न मी पाहीं |
| आत्म्याच्या शांतींत | शांति माझीहि   |
| आत्मज्ञान असें      | परोक्ष होई !   |

—अभिरुचि : जून १९४९.

## करपुतळींत

शिणले डोळे

झालीं बुबुळें

फिरूं लागल्या

खालीवरती

आणि प्रगटला

प्रभा जयाची

विस्तृत वलर्यां

प्रभाळ तारक

जणु लोखंडी भासवि जडता

कळा भयंकर

डाव्या हातीं

प्रकाशविंदु तळहातावर

पसरूं लागली पिवळट पिवळट,

अंतिं विरघळे

तेजोभव तो !

दिसूं लागलें

गोचर झाली

नर्तनिं तन्मय !

काय नृत्य पण

चपल सव्य करिं

असेल लांबी

हस्तीं दुसऱ्या

वक्त्र जयाचें

रुधिर जयांतील

खदखद हासत

अवतीभवती

तथापि शुंडा

क्षणांत केव्हा

दृश्य नीटसर

नग्ना कोणी रम्य अंगना

लोक विलक्षण !

बाण रुपेरी

पूर्ण पुरुषभर,

घट कनकाचा

बदामाकृती

ओती रमणी मधेंच केव्हा

बाणावरती,

दगडी पुतळे कैक गजांचे

सजीव ज्यांच्या करीत वळवळ

प्रदीर्घ होउन

करीत घडपड  
अवचित होई  
गेली ललना  
पुतळ्या सन्निध !

ओढुन घ्याया नग्ना युवती !  
एक यशस्वी शुंडा चंचल  
शरकलशासह

प्रकाशवलया  
तेजोभव तो,  
प्रभाळ तारक  
तळहातावर  
भोवतालच्या

घेत कर्णुनी पुन्हा प्रगटला  
पुन्हा लोपतां  
उरे काजळी  
अंधारासह !

—अभिरुचि : मे १९५१.



## त्याची आत्महत्या

लावण्य संचयीं

दिधली लोटून

तयाने काया !

महाकाव्याच्या

जणू बैठक

सिंहासन त्याचें

उत्तुंग कडा

सुरेख भव्य कथानकाची

संगमरवरी !

होती पौर्णिमा

माथ्यावरती

प्रभा आकर्षक

भरे काठोकाठ

कुणा महर्षींची

शांति अंतरींची

वर्तुळ चंद्राचें मोहक नाजूक

क्षितिजापर्यंत आसमंतांत

बुद्धाची येशूची

वाटावें याटली !

विशाल सागर

गगनच जणू

जसा परतावा

होऊन स्मरण

फिरलें माघारीं क्षितिजापासून

पुन्हा जगज्जेता

|                 |                    |
|-----------------|--------------------|
| कुठे न कांही    | उरे जिंकाया !      |
| नभींचा नीलिमा   | पीत मंदतम लवच हरित |
| तोच उदधीत       |                    |
| लोचनद्वयीं      | विशाल नील          |
| बिंबलीं किंचित् |                    |
| प्रथम मीलनीं    | मधुर अपेक्षा ?     |

|                   |                               |
|-------------------|-------------------------------|
| नक्षत्रें अस्पष्ट | ज्योत्स्नेंत निर्मल           |
| जणू प्रगटले       | स्पर्श स्वर ते स्वरविस्तारांत |
| रागिणींतील        |                               |
| अगदी मोजके        | अस्पष्ट मधुर !                |

|                   |                           |
|-------------------|---------------------------|
| स्वप्नींचा प्रकाश | अद्भुत गूढ घेऊन जणू       |
| त्याच्याच छटांनी  |                           |
| घडविलें होतें     | अवघें तें दृश्य           |
| कुणा जादूगारें !  |                           |
| आणिक एक           | तुटून तारा                |
| अत्यंत तेजस्वी    | निळा हिरवा                |
| फेकीत भोवतीं      | शलाका तेजाच्या अति सुरभ्य |
| जाहला विलीन       | अथांग जलांत !             |

|                 |                             |
|-----------------|-----------------------------|
| तयानेहि क्षणीं  | तंद्रींत आपुल्या होऊन बेभान |
| व्हावया विलीन   | पूर्ण एकरूप                 |
| भोवतालच्या      | स्वर्गीय सौंदर्या           |
| दिधली लोटून     | आपुली काया                  |
| अथांग सागरीं    |                             |
| लावण्य संचयीं ! |                             |

—तरुण भारत : दिवाळी अंक १९५२.

## मार्गदर्शक

मेघ-दुंदुभि  
एकाचसमयीं  
ध्वनि प्रचंड  
अत्यंत भीषण  
जाहला स्फोट !

नभीं नादाव्या  
शत कित्येक  
होऊन तसा

जवळ करीत  
निघालों होतों  
प्रातःस्नानार्थ  
स्नेहाने तुमच्या  
—आणि सहसा

तटिनी—जल  
न्हाऊन आम्ही  
उडाला भडका !

उभा करीत  
निघाला वर  
नभ स्पर्शाया,  
विक्राळ ज्वाळांच्या  
झाला आरंभ !

राक्षसी स्तंभ  
धुराचा लोट  
कराल तांडवा

धूमस्तंभास  
कनकवर्णी  
शिरल्या आकाशी  
पोळीत धूम  
करीत स्पर्धा  
जाहला जागा

देऊन वेढे  
शिखा अग्नीच्या  
पोळाय़ा व्योम  
कृष्णस्तंभाशीं  
संहार मूर्त !

प्रथम ठिणग्या  
आमुच्या दिशेने  
दुसऱ्या क्षणीं  
एकीस दुजी  
पेटले पलिते  
आमुच्या देहांचे

ओंजळभर  
उज्ज्वल ज्वाला  
देत लपेटा;  
स्नेहांत माखले  
पाहतां पाहतां !

हां, हां, नका धावूं  
आणाय़ा कुणी  
आण तुम्हांला—  
प्राणांची आमुच्या !  
जळतो आम्ही !  
आणि निघूं द्या  
येथून पुढे !

घडे पाण्याचे  
अगदी साऱ्यांना  
जळूं द्या अखंड !  
तातडी करून

|                    |                   |
|--------------------|-------------------|
| नवयुग जें          | यायचें आहे        |
| त्यास दावाया       | सरळ मार्ग         |
| दाटल्या तमीं       |                   |
| जात आहों आम्ही     |                   |
| होऊन पोत !         |                   |
| जाऊं द्या आम्हां ! | जळू द्या आम्हां ! |

—अभिरुचि: फेब्रु-मार्च जोडअंक १९५०.

## दिव्य काननीं

दिव्य काननीं

तेजःसीमा

कळीकळीला,

बिंदुबिंदुला

कणाकणाला,

अत्र पवित्रा

तेजोदानें

भव्य शिला नच

वरी सुरेखा

वीणाहस्ता

नादब्रह्मी

त्रिगुणातीता

ब्रह्मस्वरूपा

करीत निर्मित

इथे चराचर,

रत्नाकरतल

रंगीं मोहक

नील मण्यांच्या

गान विमोहित

अगदी मौनी,

हरित विभेच्या

लतिका डुलती

दिव्य शारदा !

छाया येथ न,

तरंगिणींतिल,

आभामयता.

लोकविलक्षण

कला शशीची

कलादेवता

विराजमाना

ब्रह्मकुमारी

त्रिगुणविधाना

शब्दोच्चारें

वनभू मंगल

इंद्रधनूंच्या,

द्रवें वाहिनी

नील धबधबा

रम्य शलाका

चतुर्थ लोकीं

श्लोकत अविरत

सुमसंभारीं

कितीक कौस्तुभ

नक्षत्रांच्या

द्युती फाकली

इथे चेतना

देवीचरणीं

नृत्यविशारद

येथे जडता—

उपल होउनीं

मधुत बुडाले

एकतानता

कंकणगीती

मधुर शंकृती

काल लागतां

नादब्रह्मीं

शाला अगतिक

आणि लाभला

शाश्वततेचा

दिव्य काननीं !

कर्णकुंडलें

प्रभाळ माळा

अद्भुत ! अद्भुत !

स्पंदन नुरलें

विनत प्रतिमा मयूर चंचल

नृत्य विस्मरे !

स्फुरण अलौकिक

प्रफुल्ल उत्पल

द्रवूं लागतां !

एकरूपता

अतीव मंजुळ

कंकणमुक्ता !

सम दावाया

स्वत्व विसरुनी

निर्मितीस वर

स्यमंतक किती

इथे एकता

वीणावाणी

—युगवाणी : ऑगस्ट १९४७











